महाकवि निराला का युग-चिंतन

दिलीप सिंह राजपूत, शोधार्थी, पी-एच.डी. हिन्दी, कला एवं मानविकी अध्ययनशाला, मैट्स वि.वि. रायपुर(छ.ग.)

महाकवि निराला हिंदी साहित्य के वह नक्षत्र हैं, जिनके काव्य की रोशनी से जन-जागृति के प्रकाश पुंज निकले हैं। स्वतंत्रता-आंदोलन के समय निराला का उदय होता है और जागृति के झकझोर देने वाले स्वर निःसृत होने लगते हैं। अपनी पहली कविता के माध्यम से निराला ने उद्घोष कर दिया था कि वह पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी मातृभूमि की पीड़ाओं से उद्वेलित हैं और मात्र पीड़ा की असहनीय दशा के लिए उत्तरदायी लोगों के प्रति उनके मन में तिरस्कार की भावना है। सन् 1923 में 'मतवाला' के तीसरे अंक के माध्यम से उन्होंने अपनी इस पीड़ा को बहुत प्रभावी ढंग से व्यक्त भी किया। लोलुप मानसिकता वाले व्यक्तियों को उन्होंने फटकारते हुए लिखा-

चूम चरण मत चोरों के तू

गले लिपट मत गोरों के तू

झटक पटक झंझट को झटपट झोंक भाड़ में मान।

मिटी मोह-माया की निद्रा गए रूप पहचान।[1]

निराला जिस रचनाधर्मिता के प्रति समर्पित थे, उसका मूल स्वाधीनता, स्वातंत्र्य, जनजागरण और सामाजिक समन्वयात्मकता है। युगीन परिस्थितियों से निराला अच्छी तरह परिचित थे और पूरी तरह विचलित। वह भारतीय समाज में जागृति का भाव भर देना चाहते थे, समाज से विसंगतियों को समूल मिटा देने के लिए कृतसंकल्पित थे। भारतीय समाज की कमजोरियों का उन्हें भली-भाँति संज्ञान रहा है। आपसी विद्वेष के चलते भारतीयों की दुर्दशा को उन्होंने समझ लिया था। अपनों के प्रति अपनों का ही विद्रोह और ईसाई साम्राज्यवाद की चाटुकारिता उन्हें खलती थी। इसी पर अपनी चिंता जाहिर करते हुए उन्होंने सन् 1923 में 'मतवाला' पत्र के तीसरे अंक के माध्यम से भारतीय चाटुकारों को चेताते हुए लिखा है-

आप आप कर अब न अपर को,

बना बाप मत वंचक नर को,

अगर उतरना पार चाहता दिखा शक्ति बलवान।

मिटी मोह-माया की निद्रा गए रूप पहचान।[2]

ब्रिटिश साम्राज्यवाद की घोर अमानवीय प्रताड़नाओं के विरोध में निराला लिखते हैं- "स्त्रियों और बच्चों के अंगों पर डंडों को मारकर घाव से बहती हुई रक्तधाराओं को देखकर अपने शासन के सुदर्शन रूप पर इतराने वाली अँग्रेज सरकार के लिए उपयुक्त शब्द हमारे कोश में अभी नहीं, मुमकिन है, पीछे गढ़ लिया जाए।" (सुधा, जून-1930, संपादकीय टिप्पणी-1) इन जघन्य परिस्थितियों को देखकर निराला आक्रोश से भर उठते थे। उनका प्रयास रहता कि किसी तरह दासता से उबरने का मार्ग खोजा जाए, बंधनों से मुक्ति का रास्ता और स्वराज की स्थापना हो। यही प्रेरणा वे अपने काव्य के माध्यम से भारतीय जनमानस में भर देना चाहते थे। उनका काव्य भारतीय भूमि की पीड़ाओं को रेखांकित करने का महती लक्ष्य लेकर चलता है और इसके माध्यम से निराला युग परिवर्तन की पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं। निराला ने अपने-आप को काव्यशास्त्रीय परंपराओं का अंधानुगामी नहीं होने दिया है, बल्कि राष्ट्र दार्शनिक बना लिया है। स्वाधीनता उनकी कविता का लोकोन्मुखी दर्शन बना है, परतंत्रता उन्हें कचोटती है, द्रविभूत करती है और इस उद्वेलन के फलस्वरूप वह लिखते हैं-

पुष्प के शून्य उर में लेती स्वाधीन साँस

पाती है सुरभि स्वाधीन गति।

आवर्तन-परिवर्तन नर्तन-सुखकीर्तन में

भूधर महान और क्षुद्र, कण-कण में

एक स्वाधीनता का गूँजता है विपुल हर्ष।[3]

युगीन परिवर्तन की ऐसी उत्कंठा अन्य तत्कालीन कवियों में दिखाई नहीं पड़ती। पराधीनता की वेदना का जैसा संचार निराला की कविता में देखने को मिलता है, वैसा तात्कालीन संदर्भ में अन्यत्र दुर्लभ है। पराधीनता के विद्रूप यथार्थ को निराला ने बहुत प्रभावोत्पादक वाणी प्रदान की है। भारतीय सामाजिकों में व्याप्त भय को समूल उखाड़ फेंकने का आवाहन उनके काव्य में देखा जा सकता है। यथा-

निर्भय अपने को/ और दुर्बल समाज को

करके दिखाना है-

'स्वाधीन' का ही/ एक और अर्थ निर्भय है।[4]

निराला चाहते हैं कि भारतीयों के मन से डर के भूत को भगा दिया जाए। यदि ऐसा होता है तो स्वाधीनता के मार्ग को प्रशस्त किया जा सकता है। निराला भारतीयों को जगाना चाहते हैं, स्वतंत्रता की ओर उन्मुख करना चाहते हैं, उनके काव्य में युगीन परिवर्तन की लालसा अपने उत्तम आवेग के साथ प्रवाहित है। सोतों को जगाना उनका अभिप्रेत बन गया है। पराधीनता को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति उनके काव्य का लक्ष्य बनी है। सामाजिकों का आवाहन करना कविता का प्राण बन गया है। उनके काव्यमय स्वर इसी को प्रमाणित करते दिखाई पड़ते हैं-

शेरों की माँद में/ आया है आज स्यार

जागो फिर एक बार।

योग्य जन जीता है/ पश्चिम की उक्ति नहीं

गीता है, गीता है-

स्मरण करो बार-बार/ जागो फिर एक बार।[5]

निराला राष्ट्रीय स्वतंत्रता के साथ-साथ सवर्ण और शूद्र के मध्य व्याप्त भेदभाव को भी भारतीय समाज का कोढ़ मानते थे। अस्पृश्यता का प्रश्न उनको भी झकझोरता रहा। इसी से उद्वेलित होकर निराला लिखते हैं- "आर्यजाति अनार्य संस्कारों में पड़कर अनार्य हो जाती है। हमारे यहाँ ही ऐसा हुआ, रक्षा के लिए अनेक प्रकार की चेष्टाएँ होती रहने पर भी आचार-विचार, वेशभूषा और भाषा तक में म्लेच्छों के चिह्न आ गए। फिर भी उच्चवर्ण वालों ने आपनी धार्मिक अकड़ नहीं छोड़ी। पराधीन जाति शूद्रत्व को प्राप्त करती है यह विश्वास उसे न हुआ।" (सुधा नवंबर 1932) ऊँच-नीच के दलदल में फँसे भारतीय समाज को चेताते हुए निराला लिखते हैं- " जो सदियों से सेवा करती आ रही है उन्हीं जातियों में यथार्थ मनोबल है। जब तक उनका उत्थान न होगा, भारत का उत्थान नहीं हो सकता।" (सुधा नवंबर 1932) निराला का यथार्थबोध बहुत तार्किक रहा है। समसामयिक विसंगतियों से वे भली-भाँति परिचित थे और इन्हीं विसंगतियों को पराधीनता का बहुत बड़ा कारण भी मानते थे। उनका यह बोध बहुत सूक्ष्म रहा है साथ ही पूर्णत: तार्किक भी। भारतीय सामाजिकों की दुर्दशा का एक बड़ा कारण उनकी दृष्टि में स्त्रीवर्ग की पराधीनता भी है। निराला की स्पष्ट धारणा थी कि राष्ट्रीय उत्थान स्त्री उत्थान के साथ जुड़ा हुआ है, जब तक नारी को विसंगतियों की रूढ़ियों से मुक्ति नहीं मिलेगी तब तक राष्ट्र का विकास पथ प्रशस्त नहीं होगा। स्त्री-दुर्दशा को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा है- "हम लोग स्वयं जिस तरह गुलाम हैं, उसी तरह अपनी स्त्रियों को भी गुलाम बना रखा है, बल्कि उन्हें दासों की दासियाँ कर रखा है। इस महादैन्य से उन्हें शीघ्र

मुक्ति देनी चाहिए। तभी हमारी दासता की बेड़ियाँ कट सकती हैं।" (प्रबंध-प्रतिमा, पृष्ठ-134-135) स्त्रियों की दासता को बेड़ियों में जकड़ने वालों को उन्होंने मूढ़ घोषित किया है। उनकी स्पष्ट धारणा है कि बिना स्त्री सहयोग के समाज का उत्थान सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। स्त्रियों को उपेक्षित कर हम एक आधे समाज का तिरस्कार करते हैं, फलस्वरूप हमारे विकास का आधा मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार की दंभपूर्ण मूढ़ता का निराला ने जमकर विरोध किया है। वे लिखते हैं- "ज्ञान के बिना जीवन व्यर्थ है। निर्वाह होना कठिन है। स्वावलंबन नहीं आता। स्वावलंबन कोई पाप नहीं, प्रत्युत पुण्य है। हमारे देश के लोग इस समय आधे हाथों से काम करते हैं। उनके हाथ निष्क्रिय हैं। जबकि स्त्रियों की भी हाथ निष्क्रिय हैं। जब स्त्रियों के भी हाथ काम में लग जाएँगे, कार्य की सफलता हमें तभी प्राप्त होगी।" (प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ-134).

इस प्रकार निराला की परिवर्तनशील दृष्टि हमारे सामने आती है। निराला का समग्र साहित्य, चाहे वह गद्य हो अथवा पद्य; स्वावलंबन, स्वाधीनता और समता मूलक समाज का पक्षधर है। वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति को समझते थे इसके लिए उन्होंने भारतीयों को ज्ञानमार्गी होने का विचार दिया। निराला मानते थे की ज्ञान के अभाव में बहुत सारी भ्रांतियाँ भारतवासियों में व्याप्त हो गई हैं, जो समाज को विघटन की ओर धकेल रही है। जिस प्रकार से ऊँच-नीच का जाति-भेद, स्त्री-पुरुष का वर्ग-भेद समाज में कोढ़ की तरह व्याप्त है, उसी तरह धार्मिक भेदभाव भी राष्ट्र को कमजोर बना रहा है। निराला धार्मिक समन्वयात्मकता का भाव सामाजिकों में जाग्रत करना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने लिखा- "भारतवर्ष में जो सबसे बड़ी दुर्बलता है, वह शिक्षा की है। हिंदुओं और मुसलमानों में विरोध के भावों को दूर करने के लिए चाहिए कि दोनों को, दोनों के उत्कर्ष का पूर्ण रीति से ज्ञान कराया जाए। परस्पर के सामाजिक व्यवहारों में दोनों शरीक हों, दोनों एक-दूसरे की सभ्यता को पढ़ें और सीखें। फिर जिस तरह भाषा में मुसलमानों के चिह्न रह गए हैं और उन्हें अपना कहते हुए अब किसी हिंदू को संकोच नहीं होता, उसी तरह मुसलमानों को भी आगे चलकर एक ही ज्ञान से प्रसूत समझकर अपने ही शरीर का अंग कहते हुए हिंदुओं को संकोच न होगा। इसके बिना, दृढ़ बंधुत्व के बिना, दोनों की गुलामी की पाश कट नहीं सकते। खासकर ऐसे समय, जबकि फूट डालना शासन का प्रधान सूत्र है। (प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ-40, 41)

निराला के यह विचार सिद्ध करते हैं कि उनका वैचारिक जगत राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत था। उचित और अनुचित को समझने की अद्भुत क्षमता से वह युक्त थे। बाह्य और आंतरिक संकट के प्रति जागरूकता का भाव उनमें भरा

हुआ था। सामाजिकों की चेतनाशून्य स्थिति उन्हें चिंतित करती थी, तर्कहीनता से उन्हें चिढ़ थी, अव्यावहारिक रूढ़ियों को वह स्वीकारते नहीं थे। समस्त प्रकार की पराधीनता से मुक्ति की चाहत उन्हें हमेशा रहती थी। अव्यावहारिक कर्मकांड़ों तर्कहीन शास्त्रीय परायणता के वे हमेशा विरोधी रहे। अपनी इसी विचारधारा को पुष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है- "बात-बात में शास्त्रों की राय लेने की जो आदत बड़े-बड़े विद्वानों तक में दिखाई पड़ती है, वह शास्त्रीय पराधीनता है।" (प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ-141) निराला के यह विचार पराधीनता से मुक्ति की वांछना के परिचायक है। तात्कालीन संदर्भों में ऐसा विचारक और परिवर्तनशील दृष्टि का प्रदाता काव्य-सर्जक दुर्लभ ही है। तात्विकता की ऐसी परख एक प्रबुद्ध दार्शनिक के विचारों में ही हो सकती है। सामान्य बुद्धि इससे शायद ही प्रत्यक्षीकरण कर सके। धार्मिक और शास्त्रीय रूढ़ियों को अनावृत करने की जो जिजीविषा अपने समय में निराला में दिखाई देती है, वह समकालीन कवियों की वाणियों में दृष्टिगोचर नहीं होती, इन्हीं धार्मिक रोगियों की अप्रासंगिकताओं को रेखांकित करते हुए निराला अपना मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं- "सब प्रणालियाँ मनुष्यों ने ही सोचकर समय-समय पर अपनी भलाई के लिए समाज में चलाई। यदि हम उन्हें ही पकड़कर उन्हें ही अपना धर्म मान बैठे तो हम धोखा खाएँगे। कारण एक जड़ तरीके को धर्म समझेंगे। धर्म कभी कोई कानून, कोई रीति नहीं हो सकता। इसीलिए हमें अपने समाज को हर वक्त इस प्रकार तैयार रखना चाहिए कि फौज के सिपाहियों की तरह, इच्छानुसार जब जैसी जरूरत पड़े, हम समाज को उसी तरह, उसी रूप में, उसी तरह से निकाल ले।" (सुधा, जून, 1930) इस प्रकार के कथन से निराला का अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है कि वह बड़े तार्किक दृष्टांतों को उद्धृत करते हुए अपने विचारों को तार्किकता के साथ प्रस्तुत करते हैं, अमानवीय और अकरणीय कृत्यों से उन्हें सदैव चिढ़ रहती। सामंती व्यवस्था, साम्राज्यवाद सदैव उनके निशाने पर रहा है इससे मुक्ति के लिए वह निरंतर जूझते दिखाई पड़ते हैं। उनकी पंक्तियों में इस पीड़ा को देखा जा सकता है-

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ,

आज अमीरों की हवेली/ किसानों की होगी पाठशाला,

धोबी, पासी, चमार, तेली/ खोलेंगे अँधेरे का ताला

एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ/ यहाँ जहाँ सेठ जी बैठते थे

बनिए की आँख दिखाते हुए/ उनके ऐंठाए ऐंठे थे

धोखा खाते हुए बैंक किसानों का खुलाओ

सारी संपत्ति देश की हो/ सारी आपत्ति देश की बने

जनता जातीय वेश की हो/ विवाद से विवाद यह ठने

काँटा काँटे से कढ़ाओ।[6]

इन पक्तियों में निराला की दूरदर्शिता, राष्ट्रवादिता, सामाजोन्मुखी चेतना एवं समतामूलक समाज की उद्घोषक है। यहाँ किसी प्रकार का भेदभाव निराला को स्वीकार नहीं, वे तो निरपेक्ष भाव से स्वतंत्रता के पक्षधर हैं। मानवीय संवेदना उनकी वाणी का दैत्य स्वरूप। प्रत्येक प्रकार की आक्रांता को समूल उखाड़ फेंकने की इच्छा शक्ति दिखाई है। सामंतशाही को गुलाब का प्रतीक मानकर 'कुकुरमुत्ता' कविता में वे उसे फटकारते देखें जा सकते हैं-

अबे, सुन बे, गुलाब/ भूल मत जो पाई खुशबू, रंगो-आब,

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट/ डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट।[7]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि साम्राज्यवादी व्यवस्था से निराला पूरी तरह सहमत रहे हैं। अप्रासंगिक और आर्थिक व्यवस्थाओं को वे शीघ्रताशीघ्र बदलने के पक्षधर थे। जिन व्यवस्थाओं से समाज का कोई हितसाधन संभव न हो उनका अनुपालन उन्हें सदैव खलता था। ऐसी व्यवस्थाओं को वे शीघ्र बदल देने के हिमायती रहे, इस पक्ष पर वे लिखते हैं, "जो समाज पुराना है, हारा हुआ है वह कितनी भी प्राचीन विभूतियों से युक्त हो, वह नवीनयुग के लिए मृत है। उसी से पहले हमें लड़ना था लड़कर परास्त करना था। परास्त कर नए समाज को सजीव और बहुजनों वाला बनाना था। तब हम राष्ट्र का पहला सोपान तय करते। इससे समाज को, राष्ट्र को बल मिलता। यही समाज राष्ट्र का समाज है।" (सुधा, अगस्त 1933) निराला जी के यह विचार दर्शाते हैं कि विचारों से वह कितने प्रगतिशील थे। समाज को दिशा दर्शन करने की उनमें कितनी भारी क्षमता थी। ऐसा कोई पक्ष नहीं था जो निराला की समझ से परे रहा हो। उन्होंने विद्वान बुद्धजीवी नेतृत्व की कुटिल भर्तियों को भी बहुत अच्छी तरह समझ लिया था। भारत के ऐसे कुटिल राजनेताओं की मंशाओं को वे भाँप गए थे। काँग्रेस के कर्णधारों, नेहरू सरीखे राजनेताओं और वंशवादी शासकों की राजनीतिक बिसात उनकी समझ से परे नहीं थी। कानपुर में मजदूरों पर जो अत्याचार ढहाए गए और गोलियाँ बरसाई गईं, उनकी राजनीतिक पृष्ठभूमि की बखिया उधेड़ते हुए निराला जी ने लिखा है-

महँगू ने कहा, हाँ कँपू में किरिया के

गोली जो लगी थी

उसका कारण पंडित जी का शागिर्द है।

रामदास को काँग्रेस मैन बनाने वाला

जो मिल का मालिक है।[8]

राजनीति का यह पाशविक स्वरूप निराला की काव्यभाषा में आक्रोश को जन्म देता है। उनकी वाणी के स्वर जब स्पंदित होते हैं, तो विडंबनाओं से पूरी तेजस्विता के साथ टकराते हैं। उनके व्यक्तित्व का अदम्य साहस कविता में राग-विराग के भाव उद्वेलित कर जाता है। उनकी व्यंग्यवाणी कुरीतियों पर कुठाराघात है, वंचितों, शोषित और पराधीन सामाजिकों के लिए संजीवनी है। उन्होंने पूर्ण यत्न किया है कि समाज को उत्थान का मार्ग दिखाया जा सके, राष्ट्रीय संबंधों को पोषित किया जाए, सर्वहारा वर्ग की मान और प्रतिष्ठा स्थापित की जा सके। इसी को पुष्ट करते वे लिखते हैं- "सुधार तो बहुत दूर की बात है। पहले आदमी बनिए, सुधार तब होगा।" (प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ-146-147) उक्त कथन से यह निश्चित हो जाता है कि सामंती सोच और ब्राह्मणवादी अतिचार उन्हें किसी कीमत पर नहीं सुहाता था। इस प्रपंच को वे समाप्त कर देना चाहते थे। अपनों के प्रति अपनों की यह हिंसा निराला के अंतर्मन को कचोटती थी। सभ्यता के नाम पर छलावा और धर्म के नाम पर ठगी से निराला को चिढ़ थी। जिस प्रकार दांपत्य के प्रति निराला उदासीन भाव रखते थे, मोह और माया से उनका जो वैराग्य था, वह दर्शाता था कि निराला कोई साधारण व्यक्तित्व नहीं थे। उनमें जूझने का अदम्य साहस था लक्ष्य प्राप्ति की प्रबल इच्छा शक्ति थी। संघर्ष उन्हें प्रिय था उनकी वाणी का क्षोभ उनके व्यक्तित्व की विराटता को भी सामने रखता है, जब तक देह में प्राण हैं तब तक संघर्ष की इच्छा उन्हें प्रिय है, इसी भाव को उन्होंने अपनी वाणी प्रदान की है-

जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर/तुझे बुलाता कृषक अधीर

ऐ विप्लव के वीर!

चूस लिया है उसका सार/ हाड़ मात्र ही है आधार

ऐ जीवन के पारावार![9]

रूढ़िवादिता के विरोध में मानवीयता की स्थापना उनकी कविता का ध्येय है। छल और कपट पर उन्होंने तीखे व्यंग्य किए हैं। विशेष रुप से फैशनपरस्तियों को निराला सिरे से नकारते हैं। निराला की स्थापना भूमिपुत्रों के पक्ष में है, वे जनसामान्य को अपना आदर्श मानते हैं। वर्ण और आश्रम से मुक्ति चाहते हैं, जीवन को जातिविहीन रूप में देखते हैं और अपनी इन्हीं स्थापनाओं को इन शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं-

धूलि में तुम मुझे भर दो

धूलि-धूसर जो हुए पर/ उन्हीं के वर वरण कर दो।

दूर हो अभिमान, संशय/ वर्ण-आश्रम-गत महाभय,

वह सदाशयता प्रखर दो।[10]

जब निराला की साहित्यगत वैचारिक पक्ष को विचारार्थ लिया जाता है तो दो रूप सामने आते हैं, प्रथम अँधेरा, द्वितीय उजाला। अंधतम पक्ष पर उन्होंने अपनी वाणी के तीव्र प्रहार किए और उज्ज्वल पक्ष को स्थापित करने की पूरी जिजीविषा दिखाई है। इस प्रकार अँधेरा निराला साहित्य का प्रतिपक्ष बना और उजाला निज पक्ष। इन दोनों के द्वंद्व को निराला ने अपनी काव्याभिव्यक्ति के माध्यम से बहुत प्रभावी रूप में पंक्तिबद्ध किया है। निःसंदेह, उनका गद्य और पद्य सामाजिकों के लिए दिशा दर्शन का पर्याय बना। उन्होंने समाज को प्रगति की आदर्श राह दिखाने का श्लाघनीय कार्य किया है। शब्दों को छंदोबद्ध रूप में उतारना निराला की नियत कभी नहीं रही। वे तो सामाजिकों के लिए समसामयिक समाजशास्त्र की रचना करना चाहते थे, इसीलिए वे लिखते हैं-

भेद कुल खुल जाय/ वह सूरत हमारे दिल में है,

देश को मिल जाए जो/ पूँजी तुम्हारे मिल में है।[11]

निराला सामाजिक की चेतना को जाग्रत करने का साहित्य रच रहे थे। उनकी चाह न मंच से लोकप्रिय कविता सुनाकर तालियाँ बटोरने की थी, न मनोरंजक साहित्य लिखकर सस्ती लोकप्रियता ही वह चाहते थे। निराला तो संतमति थे, जो केवल युग-परिवर्तन का स्वप्न देख रहे थे और अपनी इसी सदिच्छा को गद्य एवं पद्य के माध्यम से साकार करने का अथक प्रयास जारी रखे हुए थे। निराला का संपूर्ण जीवन प्रगति और परिवर्तन का प्रतीक रहा है। उन्होंने सामाजिक समन्वयता और मानवीयता को स्थापित करने के सभी मार्ग खँगाले हैं। विषमता के प्रति उनका आकोश केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति ही नहीं रहा है बल्कि भारतीय जमीदारों और सामंतशाहों पर भी उनकी भृकुटी तनी है। इसको उन्होंने अपने साहित्य में बहुत प्रभावी ढंग से उठाया भी है। जहाँ तक निराला काव्य का प्रश्न है तो वह निःसंदेह, क्रांति और परिवर्तन का वाहक है। निराला की सोंच भारतीय समाज में प्राण संचार करना चाहती थी। जिसके आधार पर एक सुदृढ़ राष्ट्र और सुखी समाज का विकास अपेक्षित था। कामगारों और कृषकों के प्रति हो रहे शोषण को वे हेय दृष्टि से देखते थे इन पंक्तियों में उनकी यह पीड़ा देखी जा सकती है-

जोत में जल छिपा/ धोखा छिपा, छल छिपा,

बदले दिमाग बढ़े/ गोल बाँधे घेरे डाले,

अपना मतलब गाँठा/ फिर आँखें फेर लीं।

जाल भी ऐसा चला,

कि थोड़ों के पेटे में बहुतों को आना पड़ा।[12]

जब हम निराला साहित्य का अध्ययन और विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि उनके जैसा प्रगतिशील युग-प्रवर्तक रचनाकार तात्कालीन संदर्भ में दिखाई नहीं पड़ता। निराला की कविता वाग-विलास का राग नहीं है, वह तो चराचर जीवन-जगत का राग और विराग है, जो किसी को भी द्रवीभूत करने और चेताने के लिए अमोघ अस्त्र है।[13] इस प्रकार कहा जा सकता है कि निराला एक सच्चे युग-प्रवर्तक साहित्यकार थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. नवल, नंदकिशोर(संपादक), निराला रचनावली खंड-1, राजकमल प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण-2006, पृष्ठ-67.
2. वही, पृष्ठ-68.
3. वही, पृष्ठ-132.
4. वही, पृष्ठ-133.
5. वही, पृष्ठ-153.
6. नवल, नंदकिशोर(संपादक), निराला रचनावली खंड-2, राजकमल प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण-2006, पृष्ठ-167-168.
7. वही, पृष्ठ-50.
8. वही, पृष्ठ-205.
9. नवल, नंदकिशोर(संपादक), निराला रचनावली खंड-1, राजकमल प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण-2006, पृष्ठ-136.
10. नवल, नंदकिशोर(संपादक), निराला रचनावली खंड-2, राजकमल प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण-2006, पृष्ठ-42-43.
11. वही, पृष्ठ-166.
12. वही, पृष्ठ-183-184.
13. शर्मा, कृष्णकुमार(संपादक), लोक चेतना के क्रांतिकारी रचनाकार 'निराला', प्रथम संस्करण-2002.